

सर्वोच्च न्यायालय की रिपोर्ट

1961

बिहार राज्य

25 अप्रैल

बनाम

रामेश्वर प्रताप नारायण सिंह

एवं अन्य

(बी. पी. सिन्हा, मुख्य न्यायाधीश, ए. के. सरकार, के. सी. दास गुप्ता,

एन. राजगोपाला अयंगर एवं जे. आर. मुधोलकर न्यायमूर्तिगण)

मेला—संपदाओं के उन्मूलन के पश्चात पूर्व-स्वामियों का मेला आयोजित करने का अधिकार—राज्य सरकार को ऐसे मेलों को आयोजित करने के लिए सशक्त करने वाला अधिनियम—क्या मौलिक अधिकारों का उल्लंघन है—विधायी क्षमता—सार्वजनिक उद्देश्य के बिना अधिग्रहण—भारत का संविधान, अनुच्छेद 14, 19, 31, 31ए, 246—बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 (1950 का बिहार अधिनियम 30), धारा 4, 6—बिहार भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 1959 (1959 का बिहार अधिनियम XVI), धारा 4, 7 ए, 7 बी, 7 सी।

बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 के आधार पर स्वामियों या पट्टाधारकों की संपदाओं और अवधियों के राज्य को हस्तांतरित होने और उसमें निहित हो जाने के पश्चात, राजस्व अधिकारियों ने उन पूर्व-स्वामियों और पूर्व-पट्टाधारकों के उन भूमियों पर मेला आयोजित करने के अधिकारों में हस्तक्षेप किया, जिन पर वे उसके बाद अधिभोग रैयत के रूप में काबिज थे और सरकार की ओर से ऐसे मेलों से शुल्क एकत्र किया, जिस पर उन मध्यवर्तियों ने उच्च न्यायालय में सरकार को ऐसे हस्तक्षेप से रोकने के लिए रिट हेतु आवेदन किए, जिन्हें उच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया। उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध बिहार राज्य के अधिकारियों द्वारा दायर की गई इन अपीलों के इस न्यायालय में लंबित रहने के दौरान, बिहार भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 1959 पारित

किया गया, जिसने 1950 के बिहार भूमि सुधार अधिनियम को पूर्वव्यापी प्रभाव से संशोधित किया, जिसके द्वारा संशोधित अधिनियम की धारा 4, खंड (बी) में 'जलकर', 'हाट' और 'बाजार' शब्दों के बाद 'मेला' शब्द जोड़ा गया। आगे के संशोधनों ने साथ-साथ यह प्रावधान किया कि राज्य सरकार की सहमति के बिना मध्यवर्तियों को नहीं बल्कि राज्य सरकार को ऐसे मेले आयोजित करने का अधिकार होगा। इन अपीलों और भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय में किए गए कुछ अन्य आवेदनों में निर्णय के लिए उत्पन्न मुख्य प्रश्न यह था कि क्या संशोधन कानून ने संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 31 का उल्लंघन किया है।

अभिनिर्धारित किया गया, कि बिहार भूमि सुधार (संशोधन) अधिनियम, 1959 संविधान के अनुच्छेद 31ए के अर्थ के भीतर किसी "संपदा" में अधिकारों के राज्य द्वारा अधिग्रहण का प्रावधान करने वाला कानून है और यदि यह मान भी लिया जाए कि यह संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 31 द्वारा प्रदत्त अधिकारों को कम करता है, तो भी इसके प्रावधान उस आधार पर शून्य नहीं हैं।

संशोधन कानून संविधान के अनुच्छेद 246 के अंतर्गत विधायिका की विधायी क्षमता के भीतर था और इसके संशोधन के पश्चात विधायी सूची ने राज्य विधायिका को सार्वजनिक उद्देश्य के बिना भी अधिग्रहण का कानून बनाने की अनुमति दी।

बिहार राज्य बनाम सर कामेश्वर सिंह, [1952] एस.सी.आर. 889, पर विचार किया गया।

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: दीवानी अपील 1960 की संख्या 27

के साथ

1960 की दीवानी अपील संख्या 574, 92, 411 और 285, 1959 की 351 और 1960 की याचिका संख्या 20 और 106।

1956 की एम. जे. सी. संख्या 57 में पटना उच्च न्यायालय के 6 अगस्त, 1957 के निर्णय और आदेश से विशेष अनुमति द्वारा अपील।

लाल नारायण सिन्हा और एस. पी. वर्मा, अपीलकर्ताओं के लिए (1960 की दीवानी अपील संख्या 27 में)।

डी. गोबर्धन, उत्तरदाताओं संख्या 1 से 7 के लिए।

के. के. सिन्हा, अपीलकर्ता के लिए (1960 की दीवानी अपील संख्या 574 में)।

डी. पी. सिंह, उत्तरदाता के लिए।

डी. पी. सिंह, अपीलकर्ताओं के लिए (1960 की दीवानी अपील संख्या 92 में)।

डी. गोबर्धन, उत्तरदाताओं के लिए।

आर. सी. प्रसाद, अपीलकर्ताओं के लिए (1960 की दीवानी अपील संख्या 411 में)।

एल. के. झा, एस. के. झा और के. के. सिन्हा, उत्तरदाताओं के लिए।

एस. पी. वर्मा, अपीलकर्ताओं के लिए (1960 की दीवानी अपील संख्या 285 में)।

एल. के. झा, आर. के. गर्ग और एस. सी. अग्रवाल, उत्तरदाता के लिए।

एस. पी. वर्मा, अपीलकर्ता के लिए (1959 की दीवानी अपील संख्या 351 में)।

आर. के. गर्ग और एस. सी. अग्रवाल, उत्तरदाताओं के लिए।

तारकेश्वर दयाल, के. के. सिन्हा और आर. सी. प्रसाद, याचिकाकर्ताओं के लिए (1960 की याचिका संख्या 20 में)।

लाल नारायण सिन्हा और एस. पी. वर्मा, उत्तरदाता संख्या 1 के लिए।

आर. के. गर्ग और एस. सी. अग्रवाल, याचिकाकर्ता (1960 की याचिका संख्या 106 में) के लिए।

एस. पी. वर्मा, उत्तरदाता संख्या 1 के लिए।

1961. 25 अप्रैल। न्यायालय का निर्णय दिया गया

दास गुप्ता, न्यायमूर्ति—मामलों के इस समूह में निर्णय के लिए उत्पन्न होने वाला सामान्य प्रश्न 1959 के बिहार अधिनियम संख्या XVI (बिहार भूमि सुधार संशोधन अधिनियम, 1959) की वैधता के संबंध में है, जहाँ तक कि यह बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धाराओं 4 और 6 को पूर्वव्यापी प्रभाव से संशोधित करता है, जैसा कि बाद में इंगित किया जाएगा, और उस अधिनियम में नई धाराएं, धारा 7 बी और धारा 7 सी सम्मिलित करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि बिहार भूमि सुधार अधिनियम के कानून बनने और राज्य सरकार द्वारा उसकी धारा 3 के तहत अधिसूचनाएं जारी कर यह घोषणा करने की कार्रवाई किए जाने के कुछ समय बाद, कि अधिसूचनाओं में निर्दिष्ट स्वामियों या पट्टाधारकों की संपदाएं या अवधियां राज्य को हस्तांतरित और उसमें निहित हो गई हैं, राजस्व अधिकारियों ने उन पूर्व-स्वामियों और पूर्व-पट्टाधारकों के उन भूमियों पर मेला आयोजित करने के अधिकारों में हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया, जिन पर वे उसके बाद राज्य के अधीन अधिभोग रैयत के रूप में काबिज थे और राज्य सरकार की ओर से ऐसे मेलों से शुल्क वसूलने के अधिकारों का निपटारा करना शुरू कर दिया। राज्य सरकार की ओर से राजस्व अधिकारियों द्वारा की गई इस कार्रवाई से व्यथित होकर, इनमें से कई पूर्ववर्ती मध्यवर्तियों—जो अब अधिभोग रैयत हैं—द्वारा पटना उच्च न्यायालय में सरकार और उसके अधिकारियों को उनके अधिकारों में इस तरह के हस्तक्षेप से रोकने के लिए रिट हेतु आवेदन किए गए।

ऐसे पांच आवेदनों से पांच अपीलें उत्पन्न हुई हैं जिनकी संख्या दीवानी अपील संख्या 351/1959, दीवानी अपील संख्या 27/1960, दीवानी अपील संख्या 92/1960, दीवानी अपील संख्या 285/1960 और दीवानी अपील संख्या 411/1960 है। उच्च न्यायालय ने यह माना कि बिहार भूमि सुधार अधिनियम की धारा 6 के प्रावधानों (इसके संशोधन से पूर्व) के आलोक में और इस तथ्य को देखते हुए कि अधिनियम की धारा 4(ए) में राज्य में किसी संपदा या अवधि के निहित होने पर होने वाले परिणामों के बारे में किए गए प्रावधान धारा 6 के प्रावधानों के "अधीन" थे, राज्य को पूर्व-मध्यवर्तियों—जो अब अधिभोग रैयत हैं—की

बकाशत भूमियों पर मेला आयोजित करने का कोई अधिकार नहीं था। तदनुसार, उच्च न्यायालय ने आवेदनों को स्वीकार कर लिया और प्रार्थना के अनुसार रिट जारी कर दी। उच्च न्यायालय के इन आदेशों के विरुद्ध बिहार राज्य और उसके अधिकारियों ने इस न्यायालय से विशेष अनुमति प्राप्त करने के पश्चात ऊपर उल्लिखित पांच अपीलें दायर की हैं।

इन अपीलकर्ताओं द्वारा विशेष अनुमति प्राप्त करने के कुछ समय बाद बिहार विधायिका ने 1959 में, बिहार भूमि सुधार संशोधन अधिनियम, 1959 (1959 का बिहार अधिनियम XVI) अधिनियमित किया। इस अधिनियम ने अन्य बातों के साथ-साथ बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 4, खंड (बी) में "जलकर, हाट और बाजार" शब्दों के बाद "मेला" शब्द जोड़कर और धारा 4 के खंड (ए) में "इस अध्याय के आगामी प्रावधानों के अधीन" शब्दों को हटाकर संशोधन किया। इसने 1950 के अधिनियम की धारा 6 में "इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी" शब्दों के स्थान पर "धारा 7 ए और 7 बी के प्रावधानों के अधीन" शब्द प्रतिस्थापित करके भी संशोधन किया। इनमें से धारा 7 बी यह प्रावधान करती है कि "जहाँ धारा 5, धारा 6 या धारा 7 के प्रावधानों के अंतर्गत मध्यवर्ती के साथ बंदोबस्त मानी गई किसी भी भूमि पर, निहित होने की तिथि के 3 वर्षों के भीतर किसी भी समय मध्यवर्ती द्वारा मेला आयोजित किया जा रहा था, ऐसी भूमि पर ऐसा मेला आयोजित करने का अधिकार, ऐसी तिथि से, राज्य में निहित होगा और किसी भी कानून में किसी बात के होते हुए भी, राज्य के पास अधिकार होगा और मध्यवर्ती के पास, राज्य सरकार की सहमति के बिना, ऐसी भूमि पर ऐसा मेला आयोजित करने या ऐसा कुछ भी करने का अधिकार नहीं होगा जिससे ऐसे मेले पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े"। धारा 7 सी धारा 7 ए और धारा 7 बी में संदर्भित हाटों, बाजारों या मेलों के बंदोबस्त के संबंध में प्रावधान करती है और अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान करती है कि बंदोबस्त निवर्तमान मध्यवर्ती या उसके उत्तराधिकारी से आवेदन प्राप्त होने के बाद उनके साथ किया जाएगा और यदि उनमें से कई हैं जो बंदोबस्त के लिए आवेदन करते हैं, तो उनमें से सबसे उपयुक्त के साथ किया

जाएगा। संशोधन अधिनियम ने धारा 7 सी को सम्मिलित करने के अतिरिक्त ऊपर वर्णित संशोधनों को मूल अधिनियम के अधिनियमन की तिथि से पूर्वव्यापी प्रभाव से लागू किया। संशोधन अधिनियम पहले ही पारित हो चुका था, जब सरकार द्वारा मध्यवर्तियों के मेला आयोजित करने के अधिकार में हस्तक्षेप के विरुद्ध समान राहत के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कई अन्य आवेदन उच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए आए। उच्च न्यायालय ने संशोधन अधिनियम की वैधता के विरुद्ध इन आवेदकों के हमले को खारिज कर दिया और यह निर्धारित किया कि अब किए गए प्रावधानों के आलोक में आवेदक किसी भी राहत के हकदार नहीं थे। 1960 की दीवानी अपील संख्या 574 उच्च न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए प्रमाणपत्र पर ऐसे ही आवेदकों में से एक द्वारा दायर की गई है।

संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत दो आवेदन इस न्यायालय में बिहार राज्य और उसके अधिकारियों के विरुद्ध परमादेश की रिट के लिए दायर किए गए थे ताकि उन्हें उनकी भूमियों पर मेला आयोजित करने के आवेदक के अधिकार में हस्तक्षेप करने से रोका जा सके। ये दोनों बिहार भूमि सुधार संशोधन अधिनियम, 1959 के कानून बनने के बाद दायर किए गए थे।

यह स्पष्ट है कि यदि संशोधन कानून वैध अधिनियमन है, जहाँ तक कि यह ऊपर बताए अनुसार 1950 के अधिनियम की धारा 4 और धारा 6 को पूर्वव्यापी प्रभाव से संशोधित करता है और धारा 7 भी सम्मिलित करता है, तो पूर्व-मध्यवर्तियों के पास नहीं बल्कि राज्य के पास बकाशत भूमियों पर मेला आयोजित करने का अधिकार है। इसलिए मुख्य प्रश्न यह है कि क्या यह एक वैध अधिनियमन है। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें पहले यह जांचना होगा कि क्या बिहार विधायिका, जिसने संशोधन अधिनियम को अधिनियमित किया, उसके पास उस तिथि को संविधान के अनुच्छेद 246 के अंतर्गत ऐसा करने की विधायी क्षमता थी; और दूसरा, क्या संविधान के अनुच्छेद 13 के प्रावधानों के कारण कानून शून्य था। संशोधन

कानून स्पष्ट रूप से समवर्ती सूची की मद 42 के अंतर्गत था, जो संपत्ति के अधिग्रहण के संबंध में एक कानून है।

श्री तारकेश्वर दयाल, जो पूर्व-मध्यवर्तियों में से एक की ओर से उपस्थित हुए, ने प्रस्तुत किया कि यह वास्तव में भूमि सुधार का मामला नहीं था; संशोधन कानून का उद्देश्य केवल राज्य के राजस्व को बढ़ाना था। यह सत्य है कि कानून कुछ व्यक्तियों से मेला आयोजित करने का अधिकार लेकर और इसे राज्य को देकर राज्य के राजस्व को बढ़ाने की संभावना रखता है। यह अच्छी तरह से हो सकता है कि राजस्व बढ़ाने का यह उद्देश्य संशोधन कानून के पीछे मुख्य उद्देश्यों में से एक था। हालाँकि, यह सोचने का कोई कारण नहीं है कि यह कानून भूमि सुधार से भी संबंधित नहीं है। फिर भी हमारे लिए इस प्रश्न पर आगे विचार करना अनावश्यक है, क्योंकि चाहे यह भूमि सुधार के संबंध में कानून हो या न हो, यह स्पष्ट रूप से और पूरी तरह से संपत्ति के अधिग्रहण के संबंध में है। विधायिका द्वारा अपनी क्षमता के भीतर कानून के छद्म रूप में अपनी क्षमता के भीतर नहीं होने वाले कानून का प्रयास करने का प्रश्न ही नहीं उठता। जो निष्कर्ष अनिवार्य रूप से निकलता है वह यह है कि संशोधन कानून संविधान के अनुच्छेद 246 के अंतर्गत बिहार विधायिका की विधायी क्षमता के भीतर था।

यह हमें विवाद के मुख्य प्रश्न पर लाता है, अर्थात्, क्या संशोधन कानून इस आधार पर शून्य है कि यह संविधान के अनुच्छेद 31, 19 और 14 का उल्लंघन करता है। यदि यह कानून अनुच्छेद 31ए के रक्षी प्रावधानों के भीतर है, तो इस प्रश्न का पूर्ण उत्तर राज्य के पक्ष में प्राप्त होता है। अनुच्छेद 31ए को संविधान (प्रथम संशोधन अधिनियम) द्वारा संविधान के प्रारंभ से पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ संविधान में अधिनियमित किया गया था। इसे संविधान (चौथा संशोधन) अधिनियम द्वारा भी संशोधित किया गया था, वह भी संविधान के प्रारंभ होने की तिथि से पूर्वव्यापी प्रभाव के साथ। यह अनुच्छेद अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान करता है कि अनुच्छेद 13 में किसी बात के होते हुए भी, राज्य द्वारा किसी संपदा या

उसमें किसी भी अधिकार के अधिग्रहण का प्रावधान करने वाला कोई भी कानून.....

इस आधार पर शून्य नहीं माना जाएगा कि यह संविधान के अनुच्छेद 19, 31 और 14 द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार के साथ असंगत है या उसे छीनता है या कम करता है। क्या संशोधन कानून "राज्य द्वारा किसी संपदा या उसमें किसी भी अधिकार के अधिग्रहण का प्रावधान" करने वाला कानून है? हमें यह विश्वास दिलाने के लिए कि यह ऐसा कानून नहीं है, पूर्व-मध्यवर्तियों की ओर से दो तर्क दिए गए हैं। पहला तर्क यह है कि संशोधन कानून जो प्रावधान करता है वह अनुच्छेद 31ए के अर्थ के भीतर "अधिग्रहण" है ही नहीं क्योंकि यह सार्वजनिक उद्देश्य के लिए "अधिग्रहण" नहीं है। यह आग्रह किया गया है कि इसका उद्देश्य केवल राजस्व की वृद्धि है।

हमें ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि जब मेला आयोजित करने का अधिकार राज्य द्वारा अपने हाथ में ले लिया जाता है, तो एकमात्र उद्देश्य राजस्व की वृद्धि होती है। यह सोचने की गुंजाइश है कि विधायिका का यह विश्वास था कि मेलों का संचालन राज्य द्वारा किए जाने पर वे बेहतर ढंग से चलेंगे और आम जनता के हित में अधिक होंगे, बजाय इसके कि उन्हें निजी व्यक्तियों के हाथों में बिना किसी नियंत्रण के छोड़ दिया जाए, जिनके लिए लाभ का उद्देश्य ही एकमात्र मार्गदर्शक सिद्धांत होने की संभावना है। हालाँकि, इस प्रश्न का उत्तर देना अनावश्यक है क्योंकि, हमारी राय में, कोई कानून "अधिग्रहण" का प्रावधान करने वाला कानून हो सकता है, भले ही अधिग्रहण के पीछे का उद्देश्य सार्वजनिक उद्देश्य न हो।

यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि संविधान (चौथा संशोधन) अधिनियम ने अनुच्छेद 31 में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किए। अनुच्छेद 31 के संशोधनों में से एक यह था कि खंड 2 अब यह प्रावधान करता है कि किसी भी संपत्ति का अनिवार्य रूप से अधिग्रहण नहीं किया जाएगा, (1) सिवाय एक सार्वजनिक उद्देश्य के लिए और (2) सिवाय एक ऐसे कानून के अधिकार द्वारा जिसमें अधिग्रहित संपत्ति के मुआवजे के लिए प्रावधान हों और जो या तो मुआवजे की राशि तय करता हो या उन सिद्धांतों और उस तरीके को निर्दिष्ट करता हो

जिससे मुआवजा निर्धारित और दिया जाना है। फिर, अनुच्छेद 31ए अन्य बातों के साथ-साथ यह प्रावधान करता है कि "अधिग्रहण" का प्रावधान करने वाला कानून इस आधार पर शून्य नहीं होगा कि वह अनुच्छेद 31 द्वारा प्रदत्त अधिकार के साथ असंगत है या उसे छीनता है या कम करता है। संविधान के चौथे संशोधन के बाद इन दोनों अनुच्छेदों को एक साथ पढ़ने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जब अनुच्छेद 31ए "अधिग्रहण" के कानून की बात करता है, तो वह एक ऐसे कानून की परिकल्पना करता है जो अधिग्रहण के लिए हो सकता है, भले ही वह सार्वजनिक उद्देश्य के लिए न हो और यह निर्धारित करता है कि भले ही यह अनुच्छेद 31(2) के पहले भाग द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकार का उल्लंघन होगा, फिर भी कानून ऐसे उल्लंघन के कारण शून्य नहीं होगा।

यह प्रश्न कि क्या राज्य द्वारा संपत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण के लिए बनाए गए कानून की वैधता को इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि "अधिग्रहण" सार्वजनिक उद्देश्य के लिए नहीं है, इस न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 31(2) के उपरोक्त संशोधन से पहले भी *बिहार राज्य बनाम सर कामेश्वर सिंह*⁽¹⁾ में विचार किया जाना था। अनुच्छेद 31(2) जैसा कि उस समय अस्तित्व में था, उसमें स्पष्ट शब्दों में यह प्रावधान नहीं था कि सार्वजनिक उद्देश्य के बिना कोई अधिग्रहण नहीं किया जा सकता है; लेकिन राज्य की ओर से यह तर्क दिया गया था कि ऐसा प्रावधान अनुच्छेद 31(2) के शब्दों में अंतर्निहित था। इस तर्क को महाजन और चंद्रशेखर अय्यर, न्यायमूर्तिगण द्वारा खारिज कर दिया गया था, लेकिन इसे पतंजलि शास्त्री, मुख्य न्यायाधीश और दास, न्यायमूर्ति द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, जिनमें से दोनों ने यह माना कि सार्वजनिक उद्देश्य की आवश्यकता अनुच्छेद 31(2) द्वारा निर्धारित अनिवार्य अधिग्रहण की एक शर्त होने के कारण, अनुच्छेद 31(4) और अनुच्छेद 31ए द्वारा ऐसी शर्त के उल्लंघन के बावजूद कानून सुरक्षित था। मुखर्जी, न्यायमूर्ति ने भी कहा कि सार्वजनिक

(1) (1952) एस.सी.आर. 889.

उद्देश्य की आवश्यकता अनुच्छेद 31(2) के प्रावधानों में निहित एक शर्त थी। श्रीमान न्यायमूर्ति ने आगे कहा:

"अपनी ओर से, मैं यह मानने के लिए तैयार रहूंगा कि अनुच्छेद 31 का खंड (4) उन सभी बातों से संबंधित है जो खंड (2) में या तो स्पष्ट शब्दों में या विवक्षित रूप से प्रदान की गई हैं और परिणामस्वरूप सार्वजनिक उद्देश्य के अस्तित्व का प्रश्न वर्तमान मामले में जांच के दायरे में नहीं आता है।" न्यायिक राय की इसी स्थिति में अनुच्छेद 31(2) को संविधान (चौथा संशोधन) अधिनियम द्वारा संशोधित किया गया था, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, और सार्वजनिक उद्देश्य की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से राज्य द्वारा अनिवार्य अधिग्रहण के लिए एक शर्त बना दिया गया था। इसलिए, इस तर्क का आधार कि अनुच्छेद 31 ए के बावजूद यह प्रश्न कि सार्वजनिक उद्देश्य था या नहीं, न्यायिक समीक्षा के लिए खुला है, अब समाप्त हो गया है।

इस संबंध में यह ध्यान देने योग्य है कि *सर कामेश्वर सिंह* के मामले⁽¹⁾ में यह तर्क कि अनुच्छेद 31(2) में किसी भी बात से हटकर, जैसा कि वह तब अस्तित्व में था, सार्वजनिक उद्देश्य के बिना अधिग्रहण का कोई कानून नहीं बनाया जा सकता था, राज्य सूची की मद 36 और समवर्ती सूची की मद 42 के शब्दों द्वारा पुष्ट करने का प्रयास किया गया था: ये मर्दे इस प्रकार थीं:-

"36. संघ के उद्देश्यों को छोड़कर, सूची III की प्रविष्टि 42 के प्रावधानों के अधीन संपत्ति का अधिग्रहण या अधिग्रहण।

"42. वे सिद्धांत जिन पर संघ या राज्य के उद्देश्यों के लिए या किसी अन्य सार्वजनिक उद्देश्य के लिए अधिग्रहित या अधिग्रहित संपत्ति के लिए मुआवजे का निर्धारण किया जाना है, और वह रूप और तरीका जिसमें ऐसा मुआवजा दिया जाना है।"

(1) [1952] एस.सी.आर. 889.

इन प्रविष्टियों के आधार पर तर्क यह था कि राज्य विधानसभाओं के पास सार्वजनिक उद्देश्य की शर्त को पूरा किए बिना संपत्ति के अधिग्रहण के लिए कानून बनाने की कोई शक्ति नहीं थी। संविधान (सातवां संशोधन) अधिनियम, जो 1 नवंबर, 1956 को लागू हुआ, उसने राज्य सूची की प्रविष्टि 36 को हटा दिया और समवर्ती सूची की मद 42 की पूर्व शब्दावली के स्थान पर "संपत्ति का अधिग्रहण और अधिग्रहण" शब्द प्रतिस्थापित कर दिए। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि इसके संशोधन के बाद विधायी सूची राज्य विधायिका को सार्वजनिक उद्देश्य के बिना भी अधिग्रहण का कानून बनाने की अनुमति देती है; और सार्वजनिक उद्देश्य के बिना ऐसे कानून के अधिनियमित होने में एकमात्र बाधा अनुच्छेद 31(2) के प्रावधान हैं। वह बाधा भी दूर हो जाती है यदि संबंधित कानून अनुच्छेद 31ए के भीतर है।

इसके बाद यह तर्क दिया गया कि मेला आयोजित करने के अधिकार का अधिग्रहण, जिसके लिए संशोधन अधिनियम प्रावधान करता है, किसी भी स्थिति में अनुच्छेद 31ए के अर्थ के भीतर "किसी संपदा में" "अधिकारों" का अधिग्रहण नहीं है, जैसा कि उसी अनुच्छेद के खंड 2(बी) में परिभाषित किया गया है। यह दलील दी गई कि इस परिभाषा में केवल उन व्यक्तियों के अधिकार शामिल हैं जो मध्यवर्ती हैं और जब तक उस रैयत के अधिकार, जिसका अधिग्रहण किया जा रहा है, एक मध्यवर्ती के नहीं हैं, यानी राज्य और भूमि जोतने वाले के बीच का व्यक्ति, तब तक उसके अधिकार "एक संपदा के संबंध में अधिकारों" की परिभाषा के भीतर नहीं आते हैं; और परिणामस्वरूप, ऐसे रैयत के अधिकारों के अधिग्रहण का प्रावधान करने वाला कानून अनुच्छेद 31ए के रक्षी प्रावधानों के भीतर का कानून नहीं है। यह इंगित किया गया है कि जिस तिथि को संशोधन अधिनियम पारित किया गया था, उस समय पूर्व-मध्यवर्ती, मध्यवर्ती के रूप में समाप्त हो चुके थे और मूल अधिनियम की धारा 6 के तहत अधिभोग रैयत बन गए थे। इसलिए, यह तर्क दिया गया है कि जो अधिग्रहित किया जा रहा था, वे मध्यवर्तियों के अधिकार नहीं बल्कि उन रैयतों के अधिकार थे जो मध्यवर्ती नहीं रह गए थे। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि धारा 4, धारा 6 और

धारा 7(बी) को संशोधित करने वाले विवादित प्रावधानों को पूर्वव्यापी प्रभाव दिया गया है, ताकि 1950 के मूल अधिनियम को उसके अधिनियमन की तिथि पर ही इन धाराओं में मूल रूप से अधिनियमित प्रावधानों के रूप में नहीं, बल्कि 1959 के संशोधन के बाद की स्थिति के रूप में पढ़ा जाए। रैयतों के अधिकारों का अधिग्रहण किया जा रहा था या नहीं, इसका निर्णय करते समय हमें यह भूलना होगा कि असंशोधित धारा 6 के परिणामस्वरूप क्या हुआ था। खुद को 25 सितंबर, 1950 की तिथि पर ले जाते हुए, जब बिहार भूमि सुधार अधिनियम, 1950 पर राष्ट्रपति की सहमति राजपत्र में प्रकाशित हुई थी, और अधिनियम को संशोधित धारा 4, धारा 6 और धारा 7(बी) के साथ पढ़ते हुए, यह मानने के अलावा कोई विकल्प नहीं है कि पूर्वव्यापी प्रभाव देने वाले संशोधन कानून के इन प्रावधानों के माध्यम से जो अधिग्रहित किया जा रहा था, वे मध्यवर्तियों के कुछ अधिकार थे। 25 सितंबर, 1950 को ये मध्यवर्ती, मध्यवर्ती के रूप में समाप्त नहीं हुए थे और इस तथ्य को कि धारा 6 के असंशोधित प्रावधानों के तहत वे बाद में अधिभोग रैयत बन गए, इस तथ्य को भ्रमित करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए कि संशोधन कानून द्वारा कुछ संपत्तियों का अधिग्रहण स्वयं 25 सितंबर, 1950 से प्रभावी होने के कारण, जो प्रावधान किया जा रहा था वह मध्यवर्तियों के अधिकारों का अधिग्रहण था।

भले ही यह मान लिया जाए कि संशोधन कानून ने रैयतों के अधिकारों के अधिग्रहण का प्रावधान किया था, फिर भी यह मानने का कोई औचित्य नहीं है कि ये अधिकार अनुच्छेद 31ए के खंड 2 की परिभाषा के भीतर "किसी संपदा में अधिकार" नहीं थे। खंड 2(बी) इन शब्दों में है:-

"किसी संपदा के संबंध में 'अधिकार' अभिव्यक्ति में किसी स्वामी, उप-स्वामी, अवर-स्वामी, पट्टाधारक, रैयत, उप-रैयत या अन्य मध्यवर्ती में निहित कोई भी अधिकार और भू-राजस्व के संबंध में कोई भी अधिकार या विशेषाधिकार शामिल होंगे।"

पूर्व-मध्यवर्तियों की ओर से तर्क यह है कि उन रैयतों के अधिकार जो मध्यवर्ती नहीं हैं, इस परिभाषा के भीतर नहीं हैं। हालाँकि, यह तर्क एक क्षण की भी जांच के सामने नहीं टिकता है, जिसका सरल कारण यह है कि यह सर्वविदित है कि साधारणतः कम से कम, एक रैयत या उप-रैयत ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसे मध्यवर्ती कहा जा सके। यह सोचना उचित है कि "रैयत" शब्द का प्रयोग उसके सामान्य सुविकसित अर्थ में किया गया था, यानी वह व्यक्ति "जो खेती के उद्देश्य से" स्वामी या पट्टाधारक के अधीन भूमि धारण करता है और "उप-रैयत" शब्द का प्रयोग समान रूप से स्वीकृत और सामान्य अर्थ में किया गया है, यानी "वह व्यक्ति जो खेती के उद्देश्य से रैयत के अधीन भूमि धारण करता है।" इस संबंध में यह याद रखना आवश्यक है कि संविधान (प्रथम संशोधन) अधिनियम द्वारा प्रथम बार अधिनियमित अनुच्छेद 31ए में "रैयत, उप-रैयत" शब्द शामिल नहीं थे; और प्रथम संशोधन के बाद परिभाषा इस प्रकार थी:

"किसी संपदा के संबंध में 'अधिकार' अभिव्यक्ति में किसी स्वामी, उप-स्वामी, अवर-स्वामी, पट्टाधारक या अन्य मध्यवर्ती में निहित कोई भी अधिकार और भू-राजस्व के संबंध में कोई भी अधिकार या विशेषाधिकार शामिल होंगे।"

यह चौथा संशोधन ही था जिसने वर्ष 1956 में "पट्टाधारक" शब्द के तुरंत बाद "रैयत, उप-रैयत" शब्द जोड़े। उस समय तक अधिकांश राज्यों में संपदाओं में मध्यवर्तियों के अधिकारों के अधिग्रहण के लिए कानून पहले ही पारित किए जा चुके थे; उन रैयतों या उप-रैयतों के अधिकार जो "मध्यवर्ती" के विवरण के अनुरूप हो सकते थे, वे "या अन्य मध्यवर्ती" शब्द के प्रयोग के कारण पहले से ही परिभाषा के भीतर थे। इसलिए परिभाषा में "रैयत" और "उप-रैयत" के अधिकारों को विशेष रूप से शामिल करने का एकमात्र कारण इन "रैयतों" या "उप-रैयतों" के अधिकारों के राज्य सरकारों द्वारा अधिग्रहण का प्रावधान करने वाले कानूनों तक अनुच्छेद 31ए के संरक्षण का विस्तार करना ही हो सकता था। ऐसी परिस्थितियों में और उस विशेष परिवेश में जिसमें परिभाषा के भीतर "रैयत" या "उप-रैयत"

शब्द लाए गए थे, यह माना जाना चाहिए कि अंत में आने वाले "या अन्य मध्यवर्ती" शब्द, नए जोड़े गए पदाधिकारों से जुड़े अर्थ को सीमित या प्रभावित नहीं करते हैं।

इस तर्क के समर्थन में उठाई गई एक अन्य दलील कि आक्षेपित कानून किसी संपदा में अधिकार के अधिग्रहण के लिए नहीं है, यह है कि मेला आयोजित करने का अधिकार भूमि में कोई अधिकार है ही नहीं। यह दलील पूरी तरह से दोषपूर्ण है। हाट, बाजार या मेला आयोजित करना स्वामी द्वारा अपनी भूमि के उपयोग का केवल एक तरीका है। जिस प्रकार वह अपनी भूमि का अन्य तरीकों से आनंद ले सकता है, वह इसका उपयोग लोगों के समूह—खरीदारों, विक्रेताओं और अन्य लोगों—को हाट, बाजार या मेले के लिए एकत्र करने के उद्देश्य से कर सकता है—बशर्ते कि, अन्य उपयोगों की तरह, इससे कोई उपद्रव उत्पन्न न हो और दूसरों के कानूनी अधिकारों का उल्लंघन न हो। परिणामस्वरूप, इस देश में मेला आयोजित करने के अधिकार को हमेशा भूमि में एक हित माना गया है, एक ऐसा हित जिसे भूमि का स्वामी भूमि के साथ या भूमि के बिना दूसरे को हस्तांतरित कर सकता है। इसलिए इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि किसी संपदा के स्वामी का अपनी भूमि पर मेला आयोजित करने का अधिकार उस "संपदा" में एक अधिकार है, जो भूमि के उसके स्वामित्व का ही एक हिस्सा है; इसी प्रकार एक पट्टाधारक का अधिकार भी है, जिसके बारे में यह याद रखना होगा कि वह केवल स्वामी को लगान के भुगतान के अधीन भूमि का मालिक होता है, वह उस पट्टे का हिस्सा बनने वाली भूमि पर मेला आयोजित कर सकता है। यह सत्य है कि किसी अन्य की भूमि पर मेला आयोजित करने का लाइसेंस, जिसमें कोई हित हस्तांतरित नहीं होता है, भूमि में कोई हित नहीं है; लेकिन यहाँ किसी अन्य व्यक्ति की भूमि पर मेला आयोजित करने के किसी लाइसेंस के अधिग्रहण का प्रश्न ही नहीं है। अतः यह तर्क कि विवादित कानून "संपदा" में अधिकार के अधिग्रहण के लिए नहीं था क्योंकि मेला आयोजित करने का अधिकार भूमि में कोई अधिकार नहीं था, उसे खारिज किया जाना चाहिए।

अंत में, यह तर्क दिया गया कि संशोधन अधिनियम की तिथि से बहुत पहले ही मूल अधिनियम की धारा 3 के तहत जारी अधिसूचनाओं के परिणामस्वरूप "संपदाएं" समाप्त हो चुकी थीं और फलस्वरूप 1959 में जो कुछ भी अधिग्रहित किया जा रहा था, वह किसी "संपदा" में अधिकार नहीं हो सकता था। यहाँ भी हमें इस तथ्य पर ध्यान देना होगा कि संशोधन अधिनियम के आक्षेपित प्रावधानों को मूल अधिनियमन की तिथि से पूर्वव्यापी प्रभाव दिया गया था, इसलिए हमें खुद को मूल अधिनियमन की तिथि 25 सितंबर, 1950 पर ले जाना होगा और यह विचार करना होगा कि क्या उस तिथि को कानून ने किसी "संपदा" में अधिकार के अधिग्रहण का प्रावधान किया था। निस्संदेह उस तिथि को "संपदाएं" अस्तित्व में थीं और इसलिए उस तिथि से पूर्वव्यापी रूप से प्रदान किया गया अधिग्रहण, एक संपदा में अधिकार का अधिग्रहण था।

भले ही हम इस तथ्य को नज़रअंदाज़ कर दें कि संशोधन अधिनियम के विवादित प्रावधानों को पूर्वव्यापी प्रभाव दिया गया था, फिर भी यह कहने का कोई आधार नहीं है कि जो अधिग्रहित किया जा रहा था वह "संपदा" में अधिकार नहीं था। बिहार काश्तकारी अधिनियम में "संपदा" को परिभाषित किया गया था जिसका अर्थ है "जिले के कलेक्टर द्वारा तत्कालीन लागू कानून के तहत तैयार और अनुरक्षित राजस्व-भुगतान वाली भूमियों और राजस्व-मुक्त भूमियों के किसी भी सामान्य रजिस्टर में एक प्रविष्टि के तहत शामिल कोई भी भूमि"। हमारे सामने इस बात पर विवाद नहीं है कि इस तथ्य के बावजूद कि अधिनियम की धारा 3 के तहत अधिसूचनाओं के परिणामस्वरूप "संपदाएं" राज्य में निहित हो गई थीं, ये रजिस्टर कम से कम संशोधन अधिनियम की तिथि तक और उसके बाद भी बनाए रखे गए थे। इसलिए स्थिति यह है कि "संपदाएं" राज्य में निहित हो गई हैं, लेकिन अभी भी "संपदा" होना समाप्त नहीं हुई हैं।

इसलिए, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि संशोधन अधिनियम के आक्षेपित प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 31ए के अर्थ के भीतर "संपदा" में अधिकारों के राज्य द्वारा अधिग्रहण

का प्रावधान करने वाले कानून हैं और परिणामस्वरूप, भले ही हम यह मान लें कि वे अनुच्छेद 14, 19 और 31 द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार के साथ असंगत हैं या उन्हें छीनते हैं या कम करते हैं, वे उस आधार पर शून्य नहीं हैं। इसलिए इस निष्कर्ष से बचा नहीं जा सकता कि पूर्व-मध्यवर्तियों के पास नहीं बल्कि राज्य के पास उन बकाशत भूमियों पर मेला आयोजित करने का अधिकार है, जिनके वे धारा 6 के प्रावधानों के तहत अधिभोग रैयत बन गए हैं।

तदनुसार, हम राज्य द्वारा दायर अपीलों को स्वीकार करते हैं और रिट जारी करने के उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द करते हैं तथा यह आदेश देते हैं कि उच्च न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 226 के तहत किए गए आवेदनों को खारिज किया जाए। हम इस न्यायालय में दायर संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत दो याचिकाओं और 1960 की दीवानी अपील संख्या 574 को भी खारिज करते हैं।

मामले की परिस्थितियों को देखते हुए, हम वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं देते हैं।

राज्य द्वारा दायर अपीलें स्वीकार की गईं।

1960 की दीवानी अपील संख्या 574 और अनुच्छेद 32 ए के तहत दायर याचिकाएं खारिज कर दी गईं।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।